भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान पत्रिका
वर्ष 23 अंक 1 जून 2015 पृ. 24-30

लघु वन-उपज के रूप में औषधीय पौधों के योजनाबद्ध संदोहन से आजीविका संवर्धन की संभावनाएँ

निखिल कुमार सचान, उपमा श्रीवास्तव* एवं अनुपम कुमार सचान**
शिक्षा अधिकारी, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, बहादुरशाह ज़फर मार्ग, नई दिल्ली
*प्रौढ़ सतत शिक्षा एवं प्रसार विभाग, छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)
**फार्मेसी संस्थान, दयानन्द दीनानाथ कालेज, रमईपुर, कानपुर 209 014 (उ.प्र.)

सारांश : वन संपदा प्रकृति की अनुपम देन होती है। वन न केवल ऑक्सीजन एवं जल व मृदा संरक्षण जैसे महत्वपूर्ण कार्य कर मानवता को लाभान्वित करते हैं, बल्कि लकड़ी, चारा, फल-फूल, जड़ी-बूटी, शहद, मोम आदि दैनिक उपयोग की वस्तुएं प्रदान कर मनुष्य को आर्थिक लाभ पहुंचाते हैं। वनों से भारी मात्रा में प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त होने वाले उत्पादों जैसे लकड़ी, चारा आदि को प्रधान वन-उपज (मेजर फॉरेस्ट प्रोड्यूस) कहते हैं। वहीं दूसरी ओर सहज ही वनों के अन्दर से अल्प मात्रा में प्राप्त होने वाले उत्पादों जैसे आंवला, फल, गोंद, शहद, मोम, पुष्प, औषधियाँ व सुरस आदि को लघु-वन उपज (माइनर फॉरेस्ट प्रोड्यूस) कहते हैं। आज जब चारों ओर जैवविविधता व वन संरक्षण पर जोर दिया जा रहा है तथा भुखमरी और बेरोजगारी के निराकरण हेतु सुनियोजित साधनों की परम आवश्यकता है तो इन परिस्थितियों में उपलब्ध वनावरण की लघु-वन उपज, विशेषतः औषधीय उत्पादों (जड़ी-बूटी, पुष्प, शहद, मोम आदि) को योजनाबद्ध संदोहन से क्षेत्रीय लोगों के लिये अनवरत आजीविका के साधन स्वरूप प्रयुक्त कर सकते हैं। वर्तमान परिदृश्य में गरीबी, भुखमरी और वन-संरक्षण के साझा हल के तौर पर लघु वन उपज के रूप में औषधीय पौधों के योजनाबद्ध संदोहन से आजीविका संवर्धन एक कारगर उपाय हो सकता है। प्राकृतिक उत्पादों के लिये दिनों-दिन बढ़ती मांग के बावजूद जैवविविधता, विशेषकर वनों का समुचित व आशातीत उपयोग आजीविका हेतु एक दीर्घकालिक विकल्प के रूप में विकसित नहीं हो सका है। अतः प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य वनांचल एवं ग्रामीण कुटुम्बों की भागीदारी से मूलतः महिलाओं व गरीबों में वन संपदा के माध्यम से आजीविका संवर्धन का विकल्प प्रस्तुत कर गरीबी उन्मूलन तथा समता के विकास के साथ समाज में ही वनों के प्रति लगाव जगाकर प्राकृतिक संसाधनों के सकारात्मक संरक्षण व संवर्धन को प्रोत्साहित करना है।

Livelihood empowerment opportunities through planned tapping of medicinal plants as minor forest produce

Nikhil Kumar Sachan, Upma Srivastava* & Anupam Kumar Sachan**

Education Officer, University Grants Commission, Bahadur Shah Zafar Marg, New Delhi
*Dept of Adult & Continuing Education & Extension, C S J M University, Kanpur (U.P.)
**Institute of Pharmacy, Dayanand Dinanath College, Ramaipur, Kanpur 209 014 (U.P.)

Abstract

Forests are the incredible gift of nature. These have benefited humanity not only by providing water, oxygen and soil conservation but also offer financial support to human being through articles of day-to-day utility like wood, fodder, fruits, flowers, herbs honey, wax etc. The directly found products in abundance from forest like wood, fodder (forage, bait) etc. are spoken as to be major forest produce. Whereas the products that are available comparatively in minute quantity such as amla, fruit, gum, honey, wax, flower, herbs and nectar etc. are called minor forest produce. Now-a-days when biodiversity and forest conservation is focused all around and there is utter need aforethought resources towards eradication of famishment and unemployment. Under such circumstances harnessing the available forest minor produce particularly herbs, flowers, honey and wax etc. in proper manner can be an option for the sustained livelihood to territorial community. In the present scenario livelihood empowerment through planned tapping of minor forest produce could serve a joint conciliation for effective management of poverty, starvation and forest conservation. In spite of the rising demands of natural products day-by-day, the biodiversity (especially forest produce) could have not been utilized optimally for long term opportunity for livelihood empowerment as expected. Hence, the objective of present paper is to evolve prosperity and equity in society and to encourage simultaneously the conservation and promotion of natural resources and environment by imparting public interest towards forests with involvement of families around forest area and rural community primarily women and paupers providing them option for empowerment of their livelihood through forest resources.

प्रस्तावना

हाल के कुछ वर्षों में क्षेत्रीय, राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय पौधों की मांग में त्वरित वृद्धि हुई है। अंतर्राष्ट्रीय खपत प्रमुखतः औषध उद्योगों में औषधीय पौधों के उपयोग के कारण उन्नत हो सकी है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार कोई भी पौधा जिसके एक या अधिक हिस्से में उपचारात्मक प्रवृत्ति से युक्त पदार्थ पाये जाते हैं अथवा जो कि औषध-रासायनिक अर्धसंश्लेषित पदार्थों के स्रोतमूलक स्वरूप प्रयुक्त होते हैं, औषधीय पादप कहलाते हैं[1]। जड़ी-बूटी आधारित औषधियां तुलनात्मक रूप से सस्ती एवं सुलभ होती हैं तथा सर्वाधिक महत्वपूर्ण यह है कि इनमें दुष्प्रभाव लगभग नगण्य होने से इनकी वैश्विक साख बढ़ रही है। आज के समय में विकसित देशों में चिकित्सकों द्वारा लिखी जाने वाली लगभग 25% दवाइयां पादपजनित होती हैं, वहीं विकासशील देशों में यह आंकड़ा 75% तक है। हर्बल औषधियों की खपत तथाकथित आधुनिक औषधियों की तुलना में कहीं अधिक है तथा नगण्य दुष्प्रभावों के चलते इनके प्रति रुझान दिनों-दिन बढ़ रहा है। चूंकि विकासशील देशों में भारी तादात में कच्चा माल जंगली पौधों से एकत्र किया जाता है, अतः इस बढ़ती हुई बाजार मांग को प्रगतिशील देशों द्वारा एक अवसर के रूप में भांप कर औषधीय पौधों के निहित विभव को उत्कर्षित कर अपने समग्र व दीर्घकालिक आर्थिक-सामाजिक विकास हेतु निमित्त किये जाने की आवश्यकता है[2]। औषधीय पौधों के सतत प्रयोग तथा आर्थिक विकास में एक प्रबल संबंध है। हर्बल दवाओं की बढ़ती हुई मांगों के कारण बहुत से औषधीय पौधों का अविवेकपूर्ण दोहन हुआ है। परिणामस्वरूप बहुत सी प्रजातियां विलुप्त होने के कगार पर पहुंच गयी हैं। यह अत्यन्त ही चिन्ता का विषय है। भारत में 90% से अधिक औद्योगिक प्रयोग में आने वाली औषधीय प्रजातियां जंगलों से एकत्र की जाती हैं जिसमें 70% से ज्यादा पौधे अनुपयुक्त तरीकों से काटे जाते हैं। घरेलू औषधीय उद्योग में 90% से अधिक औषधियां वन स्रोतों से प्राप्त होती हैं[3]। इसके अतिरिक्त वर्तमान कारोबारी ढांचे में मूल लाभार्थी दलाल और औषधीय उद्योग ही है जबकि गरीब क्षेत्रीय ग्रामीण व आर्थिक-सामाजिक रूप से पिछड़ा तबका लाभान्वित नहीं हो पाता है।

भारत भूमि प्राचीन काल से ही अपनी सांस्कृतिक धरोहर तथा उपजाऊ धरती के लिये प्रसिद्ध रही है एवं यहां विविध औषधीय पौधे पाये जाने के कारण विभिन्न चिकित्सा पद्धतियां जैसे आयुर्वेद, यूनानी, सिद्ध व प्राकृतिक चिकित्सा आदि पल्लवित एवं पुष्पित हुई हैं। इन सभी पौधों के औषधीय विनिर्माण में 90% जड़ी-बूटियों का प्रयोग होता है जो मुख्यतः वनों से आती हैं[4]। अधिक उपयोग के कारण प्राकृतिक रूप से औषधीय पौधों को बचाना मुश्किल हो गया है और उनकी संख्या में कमी आयी है। सामान्य जनता में इसकी पहचान न होने के कारण हमारे आस-पास बगीचों तथा खेतों में पाये जाने के बावजूद इन पौधों को खरपतवार समझकर लोग इन्हें नष्ट कर देते हैं। इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए विनाश विहीन, विदोहन, प्रसंस्करण, विपणन तथा हरित-उपभोक्तावाद को बढ़ावा देकर जन-भागीदारी को आधारी बनाते हुए संयुक्त वन प्रबन्धन के माध्यम से वनौषधियों व जैवविविधता का संरक्षण किया जा सकता है। गांवों में परम्परागत चिकित्सकों को अपनी योजनाओं में शामिल कर उनके अनुभवों व ज्ञान का लाभ प्राप्त करके इसे पारम्परिक ज्ञान को विज्ञान की कसौटी में परीक्षित कर वनौषधीय साहित्य स्वरूप संग्रहीत किया जा सकता है। यह वर्तमान समय की मांग है कि इस अति महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन का लाभ उठाकर योजनाबद्ध दीर्घकालिक उपयोग से देशज लोगों के आर्थिक सामाजिक सशक्तीकरण के साथ-साथ जैवविविधता का संरक्षण सुनिश्चित किया जाए[5]। औषधीय पौधों के कृषि संवर्धन में यह समुचित वहनीय संग्रहण ही वास्तव में निहित लक्ष्य को हासिल करने में प्रभावी होगा। अतः एक गैर-विनाशकारी संवहनीय संग्रहण नीति अंगीकृत किया जाना अपेक्षित है जो कि लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए बहुमूल्य औषधीय पौधों के यथास्थान संरक्षण को कार्यान्वित कर सके। आज जब पारम्परिक ज्ञान तथा अनेकों वनौषधियां उत्तरोत्तर विलुप्त हो रही हैं तो इन हालात में उपचारात्मक वनस्पतियों के साथ वनांचल के लोगों की सतत आय सुनिश्चित करने हेतु प्रभावी संग्रहण, कृषि संवर्धन, प्रसंस्करण व सरंक्षण नीतियों तथा संभावनाओं को उजागर करने की अपरिहार्य आवश्यकता है।

राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय महत्व

विश्व भर में भारत और चीन औषधीय पौधों के वृहत्तम प्रयोक्ता हैं। इनकी पारंपरिक जड़ी-बूटी आधारित चिकित्सा पद्धतियां लगभग 7000 वर्ष तक पुरानी हैं। ये दोनों राष्ट्र 2/5 भाग मानवता का अथवा दूसरे शब्दों में 2 बिलियन से अधिक लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं। विश्व पर्यन्त औषधीय इस्तेमाल में आने वाले पौधों की संख्या लगभग 50000 आंकी गयी है जो कि सपुष्पित पौधों का लगभग 13% है[2]। औषधीय पौधों का वैश्विक व्यवसाय उद्रेचक एवं अनियंत्रित है। हालांकि अनुमानतः औषधीय पौधों का अंतर्राष्ट्रीय बाजार लगभग 60 बिलियन अमरीकी डालर का है तथा यह 7% वार्षिक विकास दर से उन्नतिशील है। ऐसा प्राक्कलन किया जाता है कि औषधीय पौधों का सकल वैश्विक परिमाण अनुमानतः रु. 2,00,000 का हो सकता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार संसार की लगभग 80% आबादी पादप जनित औषधियों का किसी न किसी रूप में इस्तेमाल करती है। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक औषध, न्यूट्रास्यूटिकल्स व कॉस्मेस्यूटिकल्स नूतन औषधियों के विकास हेतु वांछित रसायन विविधता के महत्वपूर्ण स्रोतमूलक भण्डार हैं जिनका प्रयोग कदाचित नवीन जीवाणुनाशी, कार्डियोवैस्कुलर, प्रतिरक्षा-सप्रेसिव, कैंसररोधी व ऐसी अन्य दवाओं के

अन्वेषण में किया जाता है[6]। इस प्रकार लगभग 80% औषधीय उत्पाद पादप जनित हैं जिनकी बिक्री वर्ष 2003 में 65 अमरीकी डालर से भी अधिक थी।

भारत की बात करें तो योजना आयोग के अनुसार यहां उच्च वनस्पतियों की 17000 प्रजातियां पायी जाती हैं तथा 8000 से अधिक पादप प्रजातियां पारम्परिक व आधुनिक चिकित्सा में प्रयुक्त होती हैं। औषधीय पौधों के क्षेत्र में भारत का वार्षिक निर्यात 4.63 बिलियन अमरीकी डालर मूल्य का है। भारतीय उप महाद्वीप के प्राचीनतम् चिकित्सा ग्रंथ आयुर्वेद में अकेले ही 2000 औषधीय प्रजातियों का प्रतिवेदन है। इसके अतिरिक्त सिद्धा व यूनानी चिकित्सा शास्त्रों में भी इनका वर्णन है। चरक संहिता में उपचारात्मक वनस्पतियों से 350 औषधियों के निर्माण तथा उनके देशी इस्तेमाल की व्याख्या की गयी है। वर्तमान में आधुनिक फार्माकोपिया की कुल उपलब्ध औषधियों का लगभग 25% भाग पादप जनित अथवा इनसे प्राप्त स्रोतमूलक पदार्थों से अर्ध-संश्लेषित तरीके से निर्मित है। अभी भारत की हिस्सेदारी औषधीय पौधों के निर्यात में रु. 2000 करोड़ से कम है परन्तु वानस्पतिक औषधीय कच्चे माल का निर्यात वर्ष 1991-92 में 130 करोड़ से 26% बढ़कर वर्ष 1994-95 में 165 करोड़ पहुंच गया था जिसे पुनः उन्नत किया जा सकता है[2]। अभी प्रतिवर्ष औषधीय एवं सगन्ध पौधों के कच्चे माल की पैदावार 200 करोड़ मूल्य की है तथा यह आशा की जाती है कि वर्ष 2050 में यह पांच ट्रिलियन अमरीकी डालर तक हो जाएगी।

समकालिक प्रयोजन

वानस्पतिक कच्चे माल की निरन्तर बढ़ती मांग के कारण विकासशील देशों के पारिस्थितिक तन्त्र पर दबाव बढ़ रहा है जहां से अधिकांश तादात में कच्चा माल हासिल किया जाता है। उष्णकटिबन्धीय वन जोकि बहुमूल्य पादप एवं जैवविविधता के कोषागार हैं, का लगभग 50% भाग पहले ही नष्ट हो चुका है। भारत में वनावरण 1.5 मेगाहेक्टेयर प्रतिवर्ष की दर से समाप्त हो रहा है। अभी जो बचा है वह सकल भौगोलिक क्षेत्रफल के अत्यावश्यक 33% भूभाग की तुलना में मात्र 8% ही है[7]। यदि हम लघु वन उपज विशेषतः जड़ी-बूटियों के संग्रहण के परिप्रेक्ष्य में देखें तो औषधीय पौधे सामान्यतः क्षेत्रीय लोगों द्वारा एकत्र किये जाते हैं जिनकी उन तक पहुंच होती है व जिन्हें उनके पाये जाने का ज्ञान होता है। प्रायः संग्रहकर्ता कोई बाहरी व्यक्ति होता है जो कि क्षेत्रीय लोगों को मेहनताने पर रखकर संग्रह कराता है। इस प्रकार प्राप्त धन मुश्किल से कुछ दिनों या हफ्तों तक ही चलता है और परिणामस्वरूप वनांचल के लोगों के आर्थिक हालात विपन्न व अल्पविकसित ही रहते हैं। दैनिक आवश्यकताओं के संघर्ष में ये लोग जैविक संपदा का अत्यधिक एवं अनियोजित दोहन करते हैं जिससे प्राकृतिक उपलब्ध वानस्पतिक औषधियाँ दिनों-दिन विलुप्त हो रही हैं। अतः पर्यावरण संरक्षण और समेकित विकास हेतु जनभागीदारी के माध्यम से वन प्रबन्धन के क्षेत्र में शोध व समन्वय की महती आवश्यकता है। इस संदर्भ में वन सम्पदा विशेषकर लघुवन उपज के गैर-विनाशकारी तथा नियोजित संदोहन हेतु लोगों में समुचित कौशल एवं जागरूकता प्रसार के विकल्प से कदाचित् बहुआयामी लाभ होंगे। एक ओर जहां लोगों में सतत संग्रहण मार्गदर्शन के साथ मूल्य तथा गुणवत्ता संवर्धन एवं आश्वासन मानकों के आधार पर संगृहीत जड़ी-बूटियों का उचित मूल्य पर सीधा विपणन क्षेत्रीय लोगों द्वारा किया जा सकेगा जिससे इन औषधियों की गुणवत्तापरक सतत आपूर्ति सुनिश्चित हो सकेगी और लोगों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होगी। वहीं दूसरी ओर वन सम्पदा का लाभ क्षेत्रीय लोगों को मिलने से इसे अनवरत आजीविका के साधन स्वरूप भांपकर लोगों में प्राकृतिक संसाधनों के प्रति लगाव पैदा होगा जोकि पर्यावरण व वन संरक्षण एवं संवर्धन का सार्थक उपाय है। जनभागीदारी से गैर-विनाशकारी व गुणवत्तापरक संग्रहण और वनावरण के विकास द्वारा अधिकाधिक कच्चे माल की आवक से औद्योगिक उत्थान के साथ अर्जित विदेशी मुद्रा में वृद्धि तो होगी ही साथ में सामाजिक समन्वय एवं समता के विकास का विकल्प भी जाग्रत होगा।

पारम्परिक ज्ञान

पुराऔषधीय एवं पारंपरिक लोकचिकित्सकीय ज्ञान आज भी ग्रामीण समाज में स्वास्थ्य संरक्षण साधनों का महत्वपूर्ण अंग है। बीमारियाँ भी मानव सभ्यता जितनी ही पुरानी हैं तथा सदैव ही मनुष्य ऐसे पदार्थों की खोज में रहा है जो कि उसे व्याधियों से मुक्ति दिला सकें। आदिकाल में जनजातीय समूहों के कुछ ज्येष्ठतर व्यक्ति उनके अनुभव के आधार पर वन संसाधनों का इस्तेमाल रोग निदान हेतु वैद्यक कार्य करते थे। कालांतर में बारम्बार प्रयोग में लाये जाने से उनके नैदानिक हुनर के संकलन ने औषधकार का रूप ले लिया। इस प्रकार की प्रचलित उपचारात्मक युक्तियाँ अधिकाधिक जंगली पौधों एवं जड़ी-बूटियों पर आधारित थीं। समय के साथ सुनियमित तथा शोधित प्रेक्षण आधारित तथ्यपरक आनुभविक व पुनरावृत्ति जनित उपचारात्मक युक्तियों ने पारम्परिक लोकचिकित्सकीय ज्ञान की आधारशिला रखी जैसा कि विविध प्राचीन संस्कृतियों में भारत अपनी समृद्ध औषधीय संपदा के लिये जाना जाता है[8]। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में चारों ओर प्राकृतिक उत्पादों की बढ़ रही मांग के अनुरूप हमारे पास अपने जैविक तथा बौद्धिक संसाधनों के योजनाबद्ध संदोहन से विदेशी मुद्रा अर्जित करने व दीर्घकालिक रोजगार के अवसर विकसित किये जाने हेतु महत्वपूर्ण सुअवसर हैं। औषधि-साहित्यिक पैमाइश से यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान चिकित्सा विज्ञान में प्रयुक्त होने वाली

आर्थिक महत्व की जड़ी-बूटियाँ सनातन काल में भी प्रचलित थीं। ऐसे में पारंपरिक ज्ञान आधारित पुराऔषधीय कौशल ग्रामीण, जनजातीय तथा वनांचल के लोगों को स्वउदित एवं वन्य जड़ी-बूटियों की पहचान कर उनका एकत्रण कदाचित् सुगम होगा। इस माध्यम से प्रयोजत रोजगार के अन्यानेक निहित लाभ हैं जैसे दिनों-दिन नई पीढ़ी के घटते रुझान के चलते पारम्परिक पुराऔषधीय ज्ञान विलुप्त होता जा रहा है जो कि नवीन औषधियों के विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण है, साथ ही क्षेत्रीय लोगों में इस प्रकार योजनाबद्ध संग्रहण से प्राप्त आय आजीविका स्वरूप वन संरक्षण की भावना प्रेरित कर सकारात्मक वन संवर्धन को प्रोत्साहित किया जा सकता है। जन स्वास्थ्य रक्षा तथा औद्योगिक इस्तेमाल में प्रयुक्त होने वाले कुल औषधीय पौधों का 95% स्वउदित अथवा वन्य पौधों से ही अर्जित किया जाता है। मात्र 5% अंश ही व्यवसायिक खेती से प्राप्त होता है। अतैव सतत प्रयोग की आकांक्षा से वनों के अनियोजित अंधाधुंध कटान को नियन्त्रित किया जा सकता है[9]।

क्षेत्रीय जनसमुदाय हेतु औषधीय पौधों के माध्यम से आजीविका संवर्धन का विकल्प प्रस्तुत किये जाने हेतु आंचलिक वानस्पतिक ज्ञान की आधारभूत आवश्यकता को ध्यान में रखते हुये क्षेत्रीय जंगली अथवा प्राकृतिक रूप से स्वउदित आर्थिक महत्व के औषधीय पौधों का सर्वेक्षण कर जानकारी एकत्र की गयी जिससे कि अभीष्ट प्रयोजन की व्यवहार्यता का आकलन संभव हो सके। इस हेतु आस-पास के क्षेत्र में राजमार्गों, अन्य मार्गों, रेलमार्गों, नदियों तालाबों, बंजर भू-भाग व जलीय स्रोतों आदि के निकट सामान्य तौर पर स्वतः उगने वाली औषधीय महत्व की वनस्पतियों को चिन्हित कर उनके क्षेत्रीय नाम आदि का ब्यौरा स्थानीय जानकार लोगों, वनस्पतिशास्त्रियों, वैद्यों, साधुओं, हकीमों व आम-जनमानस के सहयोग से व्यक्तिगत साक्षात्कार, संकेन्द्रित समूह परिचर्चा, सघन बातचीत एवं मंत्रणा आदि के माध्यम से संकलित किया गया (सारणी 1)।

गुणवत्ता नियन्त्रण एवं मानकीकरण

अनेक जड़ी-बूटियाँ स्वास्थ्य के लिये हानिकारक प्रभाव वाली भी हो सकती हैं अथवा समान दिखने वाले औषधीय पौधों की पहचान में भ्रम हो सकता है तथा मिलावट, अनुचित निर्माण या पौधों के बारे में यथेष्ट जानकारी का अभाव और उनकी पारस्परिक क्रिया के परिणामस्वरूप अवांछनीय प्रभावयुक्त प्रतिक्रिया की संभावना आदि से इनकार नहीं किया जा सकता है। प्राकृतिक औषधियों का उचित समय पर संग्रहण आवश्यक है अन्यथा उनका उपचारात्मक विभव क्षीण हो सकता है। इसके साथ-साथ रख-रखाव की स्थिति, पैकिंग, नमी की मात्रा, तापमान, फफूंदी व जीवाणु आदि औषधीय पौधों की गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं[9]। अतः वानस्पतिक औषधियों एवं स्रोतमूलक पादप सामग्री का गुणवत्ता नियन्त्रण व मानकीकरण अपरिहार्य हो जाता है। ऐसा कदाचित संभव है कि लोकवर्गीकरण के आधार पर किन्हीं दो पौधों के मध्य विभेद प्रतिबिम्बित न हो किन्तु वह पौधे भिन्न-भिन्न प्रजातियों वाले हैं और अलग-अलग औषधीय स्रोतमूलक गुणधर्म व

सारणी 1 — ग्रामांचल में वन्यदशाओं में प्राकृतिक रूप से उगने वाली आर्थिक महत्व की प्रमुख वनौषधियाँ

धतूरा	केसर	मोम	हींग	राल	देवदार	अश्वगन्धा	अजवाइन
यूकेलिप्टस	कौंच	मंडूकपर्णी	हरीतिकी	सोवा	वच	अशोक	अर्जुन
खस	कंटकारी	मकोई	हरड़	संतरे का छिलका	चन्दन	अंजीर	अनन्तमूल
खदीर	कर्पूरकर्ची	मजिस्ठा	हरजोड़	संजीवनी	तालिसपत्र	अमलतास	गोखरू
शहद	करन्ज	महुआ	भांग	सहजन	तुलसी	अतिविश	गोंद
इसबगोल	काकानाशा	मीठी नीम	भ्रंगराज	सहजन	तेजपत्ता	अन्निमन्था	गुरमार
बबूल	कालमेघ	मुलेठी	भ्रन्गराज	सीकाकाई	जंगली प्याज	अपमर्ग	गुग्गुल
बकुची	काली मूसली	मलकांगनी	पीपल	सप्तपर्णी	जायफल	अरण्ड	गुलाब
बहेड़ा	काली जीरी	हिज्जल	पपीता	सर्पगन्धा	जामुन	आक	लभैड़
बरगद	कालादाना	पिपली	पुष्कर मूल	सदाबहार	जैट्रोफा	आमरा	लाख
बेर	कुलिन्जन	विजयसाल	पुनर्नवा	सतावर	जटामानसी	ऑवला	लाजवन्ती
बेल	कुसुम फूल	ब्रिहती	पलास	छरीला	नीम	अडूसा	लवांगा
बेलगिरी	कुचला	चित्रकमूल	रक्तचन्दन	दालचीनी	नाग-मोथा	अदरक	लटजीरा
बेलछाल	कुटकी	चिराटा	रीठा	देवदार	नागकेसर	अतीस	हिना
ब्राह्मी	कुटज						

रासायनिक संघटकों को निरूपित करते हैं जैसे *बैकोपा मोनियरी* (स्क्रुफुलेरियेसी) तथा *सेण्टेला एशियाटिका* (एपिएसी) दोनों ही उत्तर भारत में ब्राह्मी नाम से जाने जाते हैं इसी प्रकार *सिलेजिनेला ब्रायोप्टेरिस* (टेरिडोफाइट्स) एवं *क्रेसा क्रेटिका* (कान्वोल्यूसी) को संजीवनी के नाम से जाना जाता है।

वनांचल में अनेकों औषधियाँ ऐसी हैं जिनका प्रयोग वैद्य और हकीम सैकड़ों वर्षों से कर रहे हैं तथा ये अपना प्रभाव भी खूब दिखाती हैं। इस प्रकार के विद्वत ज्ञान का इस्तेमाल लघु वन उपज के रूप में औषधीय पौधों का संग्रहण कर आजीविका संवर्धन के साधन स्वरूप निमित्त किया जा सकता है। किन्तु अनेक औषधियाँ ऐसी भी हैं जिनके गुणों का वर्णन किंचित पुस्तकों व जनश्रुतियों में ही पाया जाता है। उनके गुणों की परीक्षा उचित रीति से आज तक नहीं की गयी[4]। इस दशा में जब तक यह वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित नहीं हो जाता कि इन औषधियों का क्या असर है तब तक विज्ञानवेत्ता औषधशास्त्री इनके गुणों के विषय में किये गये दावों को भ्रान्तिरहित नहीं समझ सकते। इस बात की जांच करना आवश्यक है कि इनमें कौनसा तत्व है जो रोगनाशक शक्ति के लिये कारगर है तथा इस प्रकार संगृहीत वनौषधि में परीक्षण द्वारा यदि उक्त तत्व निर्दिष्ट मात्रा में पाया जाता है तो उसमें निहित औषधीय विभव विद्यमान मान लिया जाये।

हर्ष का विषय है कि आज विभिन्न पुस्तकों एवं भारतीय औषधकोश (इंण्डियन फार्माकोपिया) व भारतीय वनौषधिकोश (इण्डियन हर्बल फार्माकोपिया) आदि में चिकित्सकीय महत्व वाली व औषधीय स्रोतमूलक लताओं तथा पेड़-पौधों आदि की पहचान तथा गुणवत्ता नियंत्रण व मानकीकरण हेतु परीक्षागार में वैज्ञानिक प्रणाली व अर्वाचीन यंत्रों की सहायता से पृथक्करण, विश्लेषण और गुणधर्म निरूपण हेतु निर्दिष्ट प्रमाणिक विधि का उल्लेख किया गया है जिससे औषधीय पौधे सामग्री की पहचान, शुद्धता एवं गुणवत्ता की जांच औषध-वैज्ञानिक प्रक्रियांतर्गत करके संगृहीत सामग्री की प्रमाणिकता व उपयोगिता सुनिश्चित की जा सकती है। गुणवत्ता नियंत्रण व मानकीकरण के लिये औषध-विद्या विशारदों के सहयोग से एक संसाधित प्रयोगशाला में फार्माकोपिया में वर्णित परीक्षण किये जाते हैं जिसमें संगृहीत औषधीय पौध की पहचान, रंग, स्वाद, दशा, स्थूल व सूक्ष्मदर्शीय परीक्षण, विजातीय पदार्थ की उपस्थिति, कड़वापन, पीएच. मूल्य, झागमाप, पानी, स्थिर व वाष्पशील तेल, अन्य वाष्पशील पदार्थ, विशिष्ट गुण, घटक सूचकांक, स्फीत कारक, स्टोमैटल इंण्डेक्स, वेन आइलेट नंबर, विशिष्ट घनत्व, अपवर्तनांक, आर्द्रता, भस्म, अघुलनशील अम्लीय भस्म, जल निष्कर्षणीय तत्व, एल्कोहल निष्कर्षणीय तत्व, औषधीय प्रमुख घटक की मात्रा का आमापन तथा बाह्य पदार्थ जैसे कीटनाशक, भारी धातुओं व सूक्ष्म जीवाणुओं की उपस्थिति का परिमापन आदि शामिल हैं[10]।

व्यापार व वाणिज्यिक परिदृश्य

पुराकाल से ही मानव रोगनिदान व सौन्दर्य संवर्धन के लिये प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पेड़-पौधों पर निर्भर रहा है। आज भी अनेकों संश्लिष्ट औषधियाँ उपलब्ध होने के बावजूद एशियाई विकासशील देशों में औषधीय पौधे रोग प्रतिकारक एवं निरोधक के रूप में सार्थक चिकित्सकीय भूमिका निभाते हैं। संगृहीत वनौषधियां लोगों के धनार्जन व आजीविका का स्रोत भी हैं जिससे कि वे राष्ट्रीय सम्पदा का महत्वपूर्ण अंग हैं। उद्योगों में प्रयुक्त होने वाली कुल वानस्पतिक औषधियों का मात्र 9-10% अंश ही औषधीय कृषि से प्राप्त होता है। शेष 90 से अधिक हर्बल औषधियाँ वनौषधियों के रूप में प्राकृतिक रूप से उगने वाले अरण्य संसाधनों से ही अर्जित की जाती हैं[11]। जैविक दृष्टिकोण से देखें तो औद्योगिक महत्व की लगभग 800 प्रमुख प्रजातियों का 20% हिस्सा भी भेषज-कृषि के माध्यम से उपलब्ध नहीं हो पाता। अतैव, औद्योगिक इस्तेमाल हेतु प्रयुक्त होने वाले आर्थिक महत्व की औषधीय वनस्पतियों के विभिन्न हिस्सों (जड़, तना, छाल, पत्तियाँ अथवा संपूर्ण पौध) की उपयोगिता के चलते, 70% से अधिक वनौषधि संग्रहण विनाशकारी कटाई व एकत्रण द्वारा असंवहनीय रूप से किया जाता है जो कि निश्चित रूप से जैवविविधता के प्राकृतिक उत्पत्ति मूलक भण्डार हेतु संकटकारी है[7]। वनौषधीय संग्रहणवृत्तियों द्वारा यह सुनिश्चित किया जाना आवश्यक है कि संग्रहीत पौधों की उत्तरजीविता उनके प्राकृतिक वास में सतत रूप से बनी रहे तथा वानस्पतिक सामग्री की उपयुक्त गुणवत्ता निर्धारित मानकों के अनुरूप हो।

वास्तव में वनौषधियों के योजनाबद्ध संदोहन से आजीविका संवर्धन के रेखांकित उद्देश्य की सार्थकता का मूल्यांकन भारत में भेषज व्यापार के अध्ययन से ही प्राप्त किया जा सकता है। इस शताब्दी के प्रथम तीन चार दशकों के आयात व निर्यात के कुल मूल्य के आंकड़ों के अध्ययन से पता चलता है कि आयात निर्यात दोनों ही में बराबर वृद्धि होती रही है[12]। हाल के दशकों में देश में वानस्पतिक अवधारणा का जबरदस्त व्यापारीकरण हुआ है। वह चाहे सौन्दर्य सामग्री के क्षेत्र में हो या चिकित्सकीय रोगनिदान के क्षेत्र में, भैषजिक वनस्पतियों के वांछित उत्पादों का बाजार अथवा न्यूट्रॉस्यूटिकल्स या तरुजनित ओ. टी.सी. दवाइयाँ। वर्तमान में औद्योगिक आँकड़ों के आधार पर कुल औषधीय बजार लगभग रु. 5000 करोड़ वार्षिक है। जिसमें अनुमानतः रु. 1200 करोड़ वार्षिक हर्बल उत्पादों की हिस्सेदारी है। विकासशील देशों में विशेषतया ग्रामीण क्षेत्रों में आधुनिक संश्लिष्ट औषधियों की अनुपलब्धता होने से मुख्यतः जड़ी-बूटी आधारित देशज चिकित्सा पद्धतियों द्वारा नैदानिक चिकित्सा का ही विकल्प है। विश्व परिप्रेक्ष्य में अकेले दक्षिण अफ्रीका में 20000 टन, लगभग 6 अरब अमरीकी डालर मूल्य के बराबर औषधीय पौधों का व्यापार प्रतिवर्ष लिया जाता

है। इसी प्रकार जाम्बिया में जड़ी-बूटी आधारित औषधीय उत्पादों का वार्षिक व्यापार लगभग 4.3 अरब अमरीकी डालर प्रतिवर्ष का होता है। एक रिपोर्ट के अनुसार 1995 में भारत में हर्बल उद्योग का प्राक्कलित टर्न-ओवर लगभग 25 अरब अमरीकी डालर का रहा था जिसमें तकरीबन 15% वार्षिक वृद्धि का अनुमान है। हांग-कांग, जापान, जर्मनी, अमरीका, दक्षिण कोरिया, फ्रांस आदि औषीय पौधों के प्रमुख आयातक देश हैं, जिसमें अमरीका, जर्मनी, हांग-कांग, सिंगापुर आदि विभिन्न औषधीय वनस्पतियों का पुनर्निर्यात करते हैं। चीन विश्व पटल पर औषधीय वनस्पतियों का निर्यातक राष्ट्र है। हिमालय क्षेत्र में अनेक औषधियाँ नेपाल से भारत में आयुर्वेदिक तथा यूनानी दवाइयों के निर्माण के लिये आयात की जाती हैं[7]।

वैश्विक परिदृश्य में हर्बल उद्योग लगभग 50 अरब अमरीकी डालर परिमाण का वार्षिक कारोबार करता है जिसमें 5.5-6.5% प्रति वर्ष की दर से उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। किन्तु प्रचुर जैविक संपदा के बावजूद इसमें भारत की हिस्सेदारी मात्र 10% की ही है। देश में जलवायु एवं मृदा की विविधता के कारण लगभग समस्त प्रकार के सुगन्धित तेल युक्त तरुवर किसी न किसी हिस्से में पाये जाते हैं तथा सांस्कृतिक संसर्ग के चलते सगन्ध औषधीय तेलों का विकास काफी पहले से रहा है। सगंध औषधीय तेलों के उत्पादन में प्रयुक्त होने वाली वनौषधियों में से पामारोसा, सिट्रोनेला (जवा घास), दालचीनी, वसाका, अदरक, जीरा, चन्दन, दिल, गुलाब, यूकेलिप्टस, खस, केसर, सल्हारी, देवदार, चीड़, पिपरमिन्ट, धनियां, पुदीना आदि प्रमुख हैं। भारत का निर्यातक विभव मुख्यतः आर्टीमिसनिन, बार्बेरिन, कोल्चीसिन, डाइसोजेनिन, हीकोजेनिन, सोलेसोडीन, एफेड्रिन, हायोसीन, हायोसायमीन, मार्फीन, कोडीन, पापावरीन, सौरैलेन, क्विनीन, क्विनिडीन, रेसपिन, अजमल्सीन, रूयूटिन, सेनोसाइड ए व बी, टैक्सॉल, जैन्थोटॉक्सिन आदि में निहित हैं। इसके अतिरिक्त अपने देश में घृतकुमारी, गुलाब, जिरेनियम, चमेली, तुलसी, मेंहदी, गुड़हल, नागकेशर, पुदीना, पिपरमिन्ट, यूकेलिप्टस, खीरा, मेंथी, आंवला, रीठा, कपूर, मालबर/निम्बू के फूल आदि वनौषधियाँ सुगन्ध-चिकित्सा व प्रसाधन आदि में बहुतायत प्रयोग की जाती हैं[13]। भारत में आजीविका संवर्धन के दृष्टिकोण से संवहनीय वनौषधीय संग्रहण हेतु उपयुक्त कुछ सुचरित पौधे निम्नांकित सारणी में सूचीबद्ध किये गये हैं, जिनके वानस्पतिक वैज्ञानिक नाम, आर्थिक विभव, उपयोगिता, उपयोगी भाग, संग्रहण हेतु उपलब्धता, प्राप्ति स्थल, प्रसंस्करण, रख-रखाव तथा सम्यक संग्रहण काल आदि की विस्तृत व्याख्या इस लेख के आगामी (द्वितीय) खण्ड में प्रस्तुत की जायेगी।

नैतिक तथा विधिक पहलू

वनौषधीय वनस्पतियों की कटाई, संग्रहण, रख-रखाव और संग्रहण पश्चात प्रबन्धन व प्रसंस्करण आदि विधिक मानकों तथा पर्यावरणीय आवश्यकताओं के अनुरूप लोकनीति एवं सामुदायिक विधान का अनुपालन सुनिश्चित करते हुए राष्ट्रीय दिशा-निर्दशों के सामन्जस्य में किया जाना चाहिये[11]। विनाशकारी विदोहन की दशा में वन्य वनस्पतियों के पुनरुत्थान तथा उत्तरजीविता का ख्याल रखा जाना आवश्यक है। क्षेत्रीय लोगों और जनजातियों के अधिकारों व संसाधनों का हनन न हो तथा बौद्धिक संपदा के एक स्व-विषयक मामलों में वनांचल के कुटुम्बों की पारम्परिक मेघा व सांस्कृतिक विरासत की भागीदारी से विश्व व्यापार संगठन व बौद्धिक संपदा के नियमों को गौर करते हुये दूरगामी परिणामदर्शी योजनानुरूप कार्यवृत्त सुनिश्चित कर राष्ट्र के नवसहस्राब्दि भारतीय प्रौद्योगिकी नेतृत्व पहल के तहत अपनी सांस्कृतिक व बौद्धिक विरासत के समुचित अन्वेषणोन्मुख पड़ताल से यथेष्ट वैज्ञानिक साक्ष्य जुटाकर उनके शीघ्रातिशीघ्र संरक्षण व संवर्धन को सुनिश्चित करना होगा। अतैव इस प्रकार आजीविका संवर्धन के साथ ही लोकज्ञान की प्रमाणिकता सिद्ध किये जाने सम्बन्धित वांछित अभिलेख संगृहीत कर औद्योगिक तथा शैक्षणिक जगत इस अपरिहार्य संयुक्त दायित्व का निर्वहन पूर्ति कर सकते हैं।

इस आशय से लक्षित जनसमुदाय के कौशल विकास व विधिक साक्षरता हेतु समुचित प्रशिक्षण द्वारा निपुण किया जाना कदाचित् व्यवहारिक होगा। वनौषधियों के संग्रहण हेतु तत्पर व्यक्तियों के इनके उत्तम संग्रहण प्रवृतियों, गुणवत्ता मानकों तथा सम्बन्धित विधिक दिशा-निर्देशों और कानूनी नियमों का ज्ञान होना वांछित है[13]। यह आवश्यक है कि संकटग्रस्त एवं विलुप्तप्राय प्रजातियों का संग्रहण न किया जाये। भारत में वनौषधियों के मानकों एवं संग्रहण से संबंधित प्रमुख विधि-विधान निम्नवत हैं जिनका आवश्यकतानुरूप ज्ञान लक्षित जनसमुदाय में प्रचारित प्रसारित किया जाना अपेक्षित है -

- औषधि तथा प्रसाधन अधिनियम 1940 की प्रथम अनुसूची।
- औषधि तथा प्रसाधन नियमावली - 1945 की अनुसूची टी. के अंतर्गत निर्धारित मानक।
- भारतीय आयुर्वेदिक/यूनानी फार्माकोपिया के अनुरूप संबन्धित वनौषधियों हेतु मानक।
- भारतीय वन अधिनियम - 1927 के प्रावधान।
- वन्यजीव संरक्षण अधिनियम - 1972 के अधीन संबन्धित प्रावधान।
- जैवविविधता अधिनियम - 2002 के प्रावधान।
- अनुसूचित जनजाति एवं अन्य परम्परागत वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम 2006 के प्रावधान।
- वनाधिकार मान्यता नियम 2007 और उत्तरवर्ती संशोधन 2012 के अंतर्गत अधिसूचित वैधानिक नियम।
- भारतीय वनौषधियों हेतु उत्तम संग्रहण प्रवृत्ति हेतु मानक दिशानिर्देश,

भारतीय औषधीय पादप बोर्ड, आयुष विभाग, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मन्त्रालय, भारत सरकार।

- विश्व स्वास्थ्य संगठन की उत्तम संग्रहण प्रवृत्तियाँ।

निष्कर्ष

निष्कर्ष स्वरूप समाविष्ठ लेख वनौषधियों के कौशलपूर्वक संग्रहण व मूल्यवर्धित प्रसंस्करण आदि के माध्यम से भारतीय वन सम्पदा के संरक्षण, संवर्धन व वनांचल के कुटुम्बों की आजीविका के संवहनीय साधन के तौर पर निमित्त किये जाने का तर्कसंगत औचित्य प्रस्तुत करता है। ग्रामीण जनजीवन एवं वनवासी कुटुम्बों के कौशल विकास तथा उनकी सहभागिता के माध्यम से विनाशकारी विदोहन के नियन्त्रण तथा राजमार्गों, रेलमार्गों, जंगलों, बाग-बगीचों, ऊसर व अनुप्रयुक्त भूमि पर, नदी, तालाब, झीलों के किनारे वन्य अवस्था में स्वउदित वनौषधियों के संवहनीय संग्रहण हेतु आर्थिक महत्व वाले वनौषधीय पौधों को चिन्हित करके उचित रीति व समय पर संबन्धित विधिक दिशानिर्देशों, गुणवत्ता मानक और वाणिज्यिक व अपेक्षित नैतिक पहलुओं का संज्ञान रखते हुये अतिरिक्त आय अर्जित करने का साधन प्रबुद्ध किया गया है।

संदर्भ

1. देशवाल वी के, इन विट्रो एन्टीबैक्टीरियल एक्टिविटी ऑफ वाटर एण्ड एथेनॉल एक्सट्रैक्ट ऑफ ट्रिबुलस टेरेस्ट्रिस ऑन ग्रोथ ऑफ *स्यूडोमोनास इरुजिनोसा* बाई डिस्क डिफ्यूजन टेस्ट, *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ प्लान्ट एनीमल एण्ड एन्वायरॉनमेंटल साइन्सेस,* **2** (2) (2012) 235-238.
2. सचान निखिल, आरिफ के एम, जमॉ के मो एवं कुमार वाई, आमरा (*स्पांडियस मैन्जीफेरा*) छाल के संभाव्य अंतर्निहित प्रदाहनाशी, दर्दनिवारक एवं आक्सीकरणरोधी प्रभाव का मूल्यांकन, *भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान पत्रिका* **19** (2) (2011) 211-218.
3. प्रसाद एस, भारत में देशीय भेषजों का चिकित्सकीय एवं आर्थिक पक्ष। इनः भारतीय औषधियां, द्वितीय संस्करण, अध्याय-1, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ (2004) 1-58.
4. द्विवेदी महावीर प्रसाद, देशी औषधियों की परीक्षा व निर्माण (सरस्वती में प्रकाशित) (1923)। इन : मिश्र, शिवगोपाल हिन्दी में विज्ञान लेखन के सौ वर्ष - द्वितीय खण्ड, विज्ञान प्रसार, (2003) 106-112.
5. उत्तर प्रदेश वन विभाग, उ.प्र. वन नीति - 1998 एवं जड़ी-बूटी संग्रहण, भण्डारण एवं विपणन दिशानिर्देश, जड़ी-बूटी निर्देशिका, उत्तर प्रदेश वन निगम, अरण्य विकास भवन, इंदिरा नगर, लखनऊ (1998)
6. सचान निखिल के, कान्ट्रीब्यूशन ऑफ इण्डियन ट्रेडिशनल एण्ड होलिस्टिक मेडिसिन इन न्यू ड्रग डिवेलपमेन्ट, इन : कुमार ए. व दास जी. (संपादकगण) बायोडाइवर्सिटी, बायोटेक्नोलॉजी एण्ड ट्रेडिशनल मेडिसिन नरोसा पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली, (2010) 175-190.
7. कालिया ए एन, टेक्स्ट बुक ऑफ इन्डस्ट्रियल फार्माकोग्नोसी, सी. बी. एस. पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, (2009) 1-35.
8. मुखर्जी बी, इण्डीजीनस ड्रग रिसर्च - प्रजेन्ट एण्ड फ्यूचर, भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली, (1953).
9. सचान निखिल के, पुष्कर एस एवं मिश्र ए, (टेक्स्ट बुक ऑफ एनवायरॉनमेन्ट एण्ड इकोलॉजी, बिरला प्रकाशन, नई दिल्ली (2009).
10. गुणवत्ता नियन्त्रण (औषधीय पौधे) लघुवनोपज प्रसंस्करण एवं शोध केन्द्र, ऑनलाइन सूचना स्रोत, वेबसाइट पता : http://www.vindhyaherbals.com/english/parameter_test.aspx (अभिगमित दिनांक 15 अगस्त 2012).
11. विश्व स्वास्थ्य संगठन, डब्ल्यू. एच. ओ. गाइडलाइन्स ऑन गुड एग्रीकल्चर एण्ड कलेक्शन प्रैक्टिसेस फॉर मेडिसनल प्लांट्स (www.who.int/) (2003).
12. चौहान एस एस, औषधि निर्माण, इन : औद्योगिक भारत, प्रथम संस्करण, अध्याय - 22 उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, (1985) 367,
13. राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड, गुड फील्ड कलेक्शन प्रैक्टिसेस फॉर इण्डियन मेडिसनल प्लांट्स, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार (2009).